राजनीति में मध्यांतर (चार)

मरा पड़ा है रामदास यह*

प्रेम सिंह

1

*शीर्षक रघुवीर सहाय की कविता 'रामदास' से लिया गया है. कविता नीचे दी गई है :

रामदास

चौड़ी सड़क गली पतली थी
दिन का समय घनी बदली थी
रामदास उस दिन उदास था
अंत समय आ गया पास था
उसे बता यह दिया गया था उसकी हत्या होगी

धीरे धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी

खड़ा हुआ वह बीच सड़क पर
दोनों हाथ पेट पर रख कर
सधे क़दम रख कर के आए
लोग सिमट कर आँख गड़ाए
लगे देखने उसको जिसकी तय था हत्या होगी

निकल गली से तब हत्यारा
आया उसने नाम पुकारा
हाथ तौल कर चाकू मारा
छूटा लोहू का फव्वारा
कहा नहीं था उसने आख़िर उसकी हत्या होगी

भीड़ ठेल कर लौट गया वह
मरा पड़ा है रामदास यह
देखो-देखो बार-बार कह

लोग निडर उस जगह खड़े रह
लगे बुलाने उन्हें जिन्हें संशय था हत्या होगी

रामदास को यह बता दिया गया था कि आज उसकी हत्या होगी. अपनी हत्या की पक्की जानकारी के बावजूद वह आतंकित नहीं है. उदास भर है कि उसका अंत समय पास आ गया है. बल्कि यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता कि वह अपनी मौत को लेकर उदास है या ज़िन्दगी से ही उदास है. दोनों स्थितियों में उसे कोई शिकायत या उम्मीद नहीं है. वह धीरे-धीरे हत्या-स्थल की तरफ अकेले चला. सोचा किसी को साथ ले ले, लेकिन रह गया. उसे पता था सड़क पर सब मौजूद हैं - मौन और निहत्थे. उन सबको पता है आज उसकी हत्या होगी. रामदास सड़क के बीच पहुंचा और पेट पर हाथ रख कर खड़ा हो गया. कुछ लोग सधे कदम रख कर सिमट आते हैं और रामदास को आंख गड़ा कर देखते हैं, जिसकी आज तय स्थान (बीच सड़क) और समय (दिन-दहाड़े) पर हत्या होनी है. तब गली से निकल कर हत्यारा आया और रामदास का नाम पुकारा. उसने हाथ तौल कर चाकू मारा और खून का फव्वारा छूट निकला. हत्यारा भीड़ को ठेल कर लौट गया. रामदास मरा हुआ पड़ा रह गया. लोग उसी जगह पर निडर खड़े रह कर बार-बार उन लोगों को बुलाने लगे, जिन्हें (रामदास की) हत्या होने में संशय था.

कवि ने रामदास की हत्या का स्थान बताया है - पतली गली (जहां शायद वह रहता था) के साथ चौड़ी सड़क; समय बताया है - दिन; मौसम बताया है - घनी बदली. लेकिन यह नहीं बताया कि रामदास कौन है, कैसा दिखता है - उसकी उम्र क्या है, कद-काठी क्या है, पोशाक क्या है, पेशा क्या है. हालांकि कवि ने कविता का शीर्षक 'रामदास' रखा है. मानो कवि को पहले से तय रामदास की हत्या की वारदात बताने की जल्दी पड़ी है. वैसी ही जल्दी रामदास को है कि उसे अपनी हत्या के तय स्थान पर तय समय पर पहुंच जाना है. हत्यारे की स्थिति भी रामदास जैसी है. कवि ने उसका हुलिया भी नहीं बताया है. हत्यारा भी अपने काम का पाबंद है. वह तय स्थान पर तय समय पर आता है और बिना किसी भी तरह का ड्रामा किये हत्या करके लौट जाता है. भीड़, जिसे ठेल कर हत्यारा लौट जाता है, का ब्यौरा भी कवि नहीं देता. भीड़ का चेहरा होता भी नहीं है. हालांकि भीड़ में कुछ लोग बताए गए हैं, जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया है - जो रामदास के पास आकर उसे नज़र गड़ा कर देखते हैं. लेकिन वे कौन लोग हैं, यह कवि स्पष्ट नहीं करता. रामदास की हत्या होने पर ये लोग जिन्हें बुलाते हैं, वे कौन लोग हैं, यह भी कवि नहीं बताता.

रामदास नाम होने के बावजूद अनाम है. हत्यारा और भीड़ भी अनाम हैं. उस शहर, गली और सड़क का नाम भी नहीं पता, जहां रामदास की हत्या होती है. इतने छिपावों के साथ कवि इस कविता में क्या उद्घाटित करना चाहता है? सपाटबयानी के शिल्प में लिखी गई इस कविता का मूल कथ्य क्या है? इस प्रश्न पर विचार करते वक्त यह ध्यान रखने की जरूरत है कि

कवि को उसकी कविता के दो अर्थ निकाले जाने का भय बना रहता है. कविता का सीधा और एक ही अर्थ कवि को काम्य है - फिर भले ही उसकी विविध व्यंजनाएं हों. माना जा सकता है कि यह (कविता का) एक ऐसा समाज है, जहां हत्या स्वाभाविक घटना बन गई है. यानी समाज हत्या की संस्कृति में जीने का आदी बन चुका है. कविता में कवि का पूरा बलाघात इसी यथार्थ पर है. (यह कविता कवि के दूसरे काव्य-संग्रह 'हंसो हंसी जल्दी हंसो' (1978) में संगृहित है; उसके पहले का काव्य-संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' 1967 का है.) ज़ाहिर है, इस एक दशक (1967 से 1978) के आगे-पीछे भी इस कविता का यथार्थ फैला है. 'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता में एक बेचैनी मिलती है - "मरते मनुष्य के बारे में क्या करूं/क्या करूं क्या करूं मरते मनुष्य का". उस कविता में कुछ लोगों के प्रति संबोधन, शिकायत और व्यंग्य भी है. लेकिन 'रामदास' में केवल हत्या का सन्नाटा चित्रित हुआ है.

कविता में जीवन ज्यों का त्यों नहीं आता है. न सामाजिक जीवन, न व्यक्तिगत-विशिष्ट जीवन. लेकिन कविता में जो भी आता है, आता जीवन से ही है. सत्तर के दशक में कवि को लगता है कि समाज में मनुष्य की हत्या हो जाना एक सामान्य और स्वीकृत बात है. हत्या होनी है, यह हत्या के शिकार, हत्यारे और लोग (बड़े-छोटे) सबको पता रहता है. जिन्हें हत्या होने में संशय होता है, उन्हें भी हत्या-स्थल पर मौजूद लोग बार-बार बताते हैं कि पहले से तय हत्या हो गई है. हत्या-स्थल पर मौजूद लोगों को केवल यही कर्तव्य सूझता है कि वे संशय करने वालों को सूचित कर दें. वे हत्यारे को रोकने, पकड़ने, बीच-बचाव करने या मारे गए रामदास को उठाने का उद्यम नहीं करते. हत्या-स्थल से लौट कर सभा-सेमिनार, धरना-प्रदर्शन, प्रोटेस्ट मार्च आदि आयोजित करने का संकेत भी नहीं देते.

2

कविता के दायरे में रहते हुए कहा जा सकता है कि अभी हत्या के लिए एक अकेले व्यक्ति (रामदास) का नाम पुकारा गया है, अगली बार एकाधिक लोगों का नाम पुकारा जा सकता है. इस बार रामदास का हत्यारा गली से ही निकल कर आता है, अगली बार राजपथ से निकल कर आ सकता है. इस बार पतली गली में रहने वाले रामदास की हत्या होती है, अगली बार चौड़ी सड़क पर रहने वाले किसी व्यक्ति की हत्या हो सकती है. इस बार रामदास नाम के आदमी की हत्या हुई है, अगली बार रहीमदास की बारी हो सकती है. इस बार हत्यारा भीड़ के सामने हत्या करता है, अगली बार भीड़ खुद हत्या को अंजाम दे सकती है. इस बार हत्या चाकू से हुई है, अगली बार कोई अन्य हथियार हो सकता है. हाथ से लेकर आग तक हत्या के अनेक हथियार हो सकते हैं. अकेला हत्यारा अथवा भीड़ जरूरी नहीं है हत्या करने के लिए हर बार सड़क पर निकल कर आएं. घर में घुस कर भी सुभीते से हत्या की जा सकती है. हत्या को अंजाम देने का काम चुपचाप हो सकता है, और नारे/जैकारे लगा कर भी. हत्या की संस्कृति

में पगे समाज में हत्यारों का अभिनंदन हत्या की तरह एक स्वाभाविक घटना मानी जा सकती है. हत्याएं आम होंगी तो ज़ाहिर है आत्महत्याएं भी होंगी.

जो भीड़ रामदास की हत्या होते हुए देखती है, वह उतनी ही नहीं है. न खुद हत्या को अंजाम देने वाली भीड़ उतनी ही होती है. वह पूरे देश और विदेश में फैली हो सकती है. रामदास की हत्या करने वाली भीड़ में वे सभी भले लोग शामिल हैं, जो अपनी और परिजनों की पूरी सुरक्षा की गारंटी चाहते हुए कहते हैं रामदासों की सरेआम हत्या की चर्चा नहीं की जानी चाहिए. ऐसा करने से, उनके मुताबिक, विदेश में देश की छवि खराब होती है; भीड़-हत्या एक विदेशी अवधारणा है; हमारे यहां जीव-मात्र की हत्या करना महापाप बताया गया है; गाड़ी के पहिये के नीचे आकर कुचल जाने वाले पिल्ले के लिए भी इंसान को कुछ न कुछ दुःख होता है. बड़े-बड़े अफसर, प्रोफेशनल, कलाकार, पत्रकार, बुद्धिजीवी इस आख्यान में शामिल होते हैं. रामदास की हत्या का विरोध करने वाले भी बड़ी मात्रा में होते हैं. हत्या का उनका अलग आख्यान होता है. लिहाज़ा, वे हत्या होते देखने वाली भीड़ का हिस्सा ही होते हैं. अगर वे लोग सचमुच हत्या के विरुद्ध होते तो हत्या की यह संस्कृति जड़ नहीं जमा सकती थी.

'रामदास' कविता के रचयिता को लोकतंत्र का कवि कहा जाता है. इस नाते यह पूछा जा सकता है कि लोकतंत्र में एक समाज भीड़ क्यों बन जाता है? वह भी हत्या होते देखने वाली अथवा हत्या करने वाली भीड़. इस प्रश्न के उत्तर की तलाश में ज्यादा उधेड़-बुन नहीं करनी पड़ती. आधुनिक देश का एक संविधान होता है. संविधान होता है इसलिए लोग नागरिक होते हैं. संविधान नहीं होता तो लोग नागरिक नहीं होते. लोग नागरिक नहीं होते तो भीड़ होते हैं. भीड़ धर्मों, जातियों, कबीलों, क्षेत्रों आदि के आधार पर अपनी पहचान करती है. रघुवीर सहाय का काव्य-संसार संवैधानिक लोकतंत्र को भीड़ के लोकतंत्र में बदलने के विरुद्ध एक वृहद् चेतावनी के रूप में पढ़ा जा सकता है.

कविता के पेटे में ही यह सवाल भी पूछा जा सकता है कि क्या कोई ऐसा पक्ष है ही नहीं, जो हत्या की संस्कृति का विरोध करता हो; और उसका विकल्प भी प्रस्तुत करता हो? कविता में जिस व्यक्ति की हत्या हुई है, उसका नाम रामदास है. गांधी भी राम का दास था, भले ही उसका नाम मोहनदास रखा गया हो. गांधी को भी लम्बे समय से पता था कि उसकी हत्या होगी. वह यह जान गया था कि उसे अपनी भूमिका हत्या की संस्कृति के बीचों-बीच रहते हुए निभानी है. 125 साल जीने के हौसले के बावजूद उसे अपना अंत समय पास आ जाने का भी साफ़ पता चल गया था. उसे यह भी पता था कि उसकी हत्या महज हत्या नहीं, वध होगा. लेकिन वह अंतिम सांस तक हत्या की संस्कृति के विरोध और जीवन की संस्कृति के पक्ष में डटा रहा. वह बुद्ध और ईसा मसीह जैसा नहीं था. उसने हत्या की संस्कृति पर कायम साम्राज्यवादी-वर्चस्ववादी सभ्यता को बिना उसके साथ शत्रुता बनाए निर्णायक चुनौती दे डाली थी. एकबारगी असंख्य लोग सीना खोल कर हत्यारी सभ्यता के सामने उठ खड़े हुए थे. मानव

सभ्यता के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ था. इसीलिए वह जीत नहीं सकता था. हत्या उसकी नियति थी.

हत्या के पहले उसे कड़ा सबक सिखाना जरूरी था ताकि कोई और उस तरह की हिमाकत न कर सके. उसके सामने उसी के लोगों ने आपसी मार-काट में 10 लाख से ऊपर लोगों की लाशें बिछा दी थीं. सबक सिखाने का यह सिलसिला उसकी हत्या के बाद से आज तक अनेक रूपों में अनेक तरीकों से चल रहा है. क्या यह छोटी-सी कविता उस आधुनिक औद्योगिक सभ्यता पर टिप्पणी है, जिसके सिर पर 10 करोड़ के ऊपर हत्याओं का सेहरा बंधा है, और जिसमें नित नए इजाफे होते जाते हैं? इस सभ्यता में हत्या का शिकार हुए मानवों की सही गिनती समस्त डिजिटल तरक्की के बावजूद एक दुश्कर कार्य है. उस दिशा में बस कुछ अनुमान ही लगाए जाते हैं. लेकिन मानवेतर प्राणियों की हत्याओं का अनुमान लगाना भी असंभव है.

हत्या के कारोबार से इस सभ्यता के सामने कोई संकट खड़ा नहीं होता. बल्कि यह उसकी मजबूती और टिकाऊपन के लिए जरूरी कारोबार है. गांधी ने इसे शैतानी सभ्यता कहा था. यहां दिया गया 10 करोड़ से ज्यादा हत्याओं का हवाला इस सभ्यता के पैरोकारों को हमेशा की तरह आक्रोश से भर देगा. वे इसे मानव सभ्यता के विकास का अभी तक का सबसे अच्छा चरण बताते हैं. उनके अपने तर्क हैं. रामदास शायद पागल है, जो मारा जाने के लिए गली से निकल कर सड़क पर आ जाता है, जिसकी एक पागल हत्या कर देता है, और कुछ पागल लोगों की भीड़ तमाशबीन बनी रहती है. वे कह सकते हैं, बल्कि कहते ही हैं कि 'रामदास' का कवि भी भटकाव का शिकार है. क्योंकि उसके पास सही विचारधारा नहीं है.

3

कवि ने हत्या के रूटीन कार्यव्यापार को केंद्र में रख कर यह कविता चारों ओर से बांध दी है. न आकाश में छाई घनी बदली में बिजली की कौंध की गुंजाईश है, न वहां सूरज के प्रकाशित होने की उम्मीद नज़र आती है. धरती पर भी कहीं से रोशनी की सूरत नज़र नहीं आती. कविता का विषादपूर्ण वातावरण पाठक को विषादग्रस्त बनाता है. हत्या की संस्कृति में कहीं जीवन की उज्ज्वलता के चिन्ह नज़र नहीं आते. यह सब सचमुच डिप्रेसिंग है. अगर एक क्षण के लिए चमक पैदा होती है, तो वह चाकू के वार से छूटने वाले खून के फव्वारे की है. कोई चाहे तो उससे कोई क्रांतिकारी अर्थ निकाल सकता है. लेकिन कविता के पूरे वातावरण के मद्देनज़र चाकू की तेज धार से पैदा होने वाली खून की यह क्षणिक चमक कविता के विषादपूर्ण वातावरण में भयावहता का रंग भरती प्रतीत होती है.

क्या लोकतंत्र के कवि, अथवा किसी भी कवि को नितांत डिप्रेसिंग कविता लिखनी चाहिए? शायद नहीं. जीवन को चलना ही होता है. गहरे से गहरे अंधकार में भी जीवन चलता है. रोशनी

की किरणें भी फूटती हैं - जीवन में भी और रचना में भी. कविता की अंतिम पंक्ति में संशय - 'जिन्हें संशय था हत्या होगी' - शब्द आया है. इस शब्द का साहित्य और दर्शन दोनों में अर्थ-गर्भित उपयोग होता आया है. आधुनिक काल का साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है. बल्कि आधुनिक काल में संशय जटिल आर्थिक व्यंजनाओं को धारण और व्यक्त करने वाला संभवत: सर्वाधिक सार्थक पद है. 'राम की शक्तिपूजा' (सूर्यकांत त्रिपाठी निराला) और 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता) में वे राम तक संशय-ग्रस्त होते हैं, जिनकी कथा को तुलसीदास ने 'संशय विहग उड़ावनहारी' बताया था.

पहली नज़र में लगता है कवि ने संदेह शब्द की जगह संशय शब्द रख दिया है, क्योंकि संदेह के साथ कविता की लय कुछ बाधित होती है. रामदास की हत्या में संदेह ऐसे लोगों को हो सकता है जो अपने को रामदास का पक्षधर बताते हैं. कि उनके रहते रामदास की हत्या भला कैसे हो सकती है? इसलिए वे हत्या-स्थल पर चल कर नहीं आते. लेकिन, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उनके संदेह से हत्या की संस्कृति पर कोई निर्णायक फर्क नहीं पड़ना है. क्योंकि उन्हें हत्या की संस्कृति को लेकर संशय नहीं व्यापता. कविता की अंतिम पंक्ति के आधार पर कह सकते हैं कि हत्या-स्थल की भीड़ के बाहर कुछ ऐसे लोग मौजूद हैं, जो हत्या की संस्कृति को लेकर संशय-ग्रस्त हैं. कविता में यह एक गहरा रचनात्मक संकेत है. हत्या की संस्कृति में बंद समाज के भीतर रोशनी की खिड़की खुलने की संभावना बनी हुई है.

पुनश्च : करीब 25 साल पहले मैंने इस कविता में निहित एक दरार से एक कविता खींचने की कोशिश की थी. हत्यारे का हाथ कितना भी सधा हुआ हो, और उसने कितना भी हाथ तौल कर चाकू मारा हो, रामदास की ठौर मौत नहीं हो सकती थी. चाकू के अकेले वार के बाद वह तड़प-तड़प कर दम तोड़ता. कुछ घुटी हुई चीखें भी निकलतीं. तत्काल काम तमाम करने के लिए हत्यारे ने चाकू को उमेंठा होगा और अंतड़ियों को बाहर खींचा होगा. रामदास कितना भी निरपेक्ष रहा हो, उस क्षण उसकी आंखों में चमक कौंधी होगी. वह चमक हत्यारे की आंखों से टकराई होगी और हत्यारे की आंखों में उभरी चमक में समा गई होगी. वह जीवन और मृत्यु की मिली-जुली चमक हो सकती है. इस तरह हत्या के शिकार रामदास का एक अंश हत्यारे के वजूद में शेष रह गया होगा. हत्यारा मौत का हमसफ़र तो है ही, हो सकता है किसी मोड़ पर जीवन का हमसफ़र बन जाए!